परिवार : एक संस्थागत अवधारणा

डॉ सजीव के, असिस्टेंट प्रोफेसर,

एन एस एस कॉलेज, ओटप्पलम .

मामूली तौर पर यह माना गया है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अत: उसी के अनुसार वह अपना जीवन – यापन, परिवार को समाज से संबंध रखकर ही करता है । कोई भी व्यक्ति स्वयं का पूर्ण मूल्यांकन समाज को अलग रखकर नहीं कर सकता; क्योंकि सिर्फ व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं वरन् व्यावसायिक स्तर पर भी भौतिक वस्तुओं का आदान मनुष्य को करना पड़ेगा । हर मनुष्य को अपने विचारों का आदान प्रदान भी दूसरे व्यक्तियों से करना पडेगा । व्यक्ति का सम्बन्ध प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में समाज के दूसरे मनुष्य से होता रहता है।

परिवार परमात्मा की ओर से स्थापित एक साधन है, इस विचार को माने या न माने एक बात स्पष्ट है कि परिवार मनुष्य द्वारा निर्मित एक सामजिक संस्था है। परिवार में शादी भी एक संस्था है। शादी के ज़रिये परिवार नामक संस्था का विकास होता है। पारिवारिक संस्था की बुनियाद शादी की संस्था है। डेटिंग बगैरह से परिवार की संस्था में दरारें पड़ जाती हैं । परिवार की संस्थागत अवधारणा पर विचार करना इस शोध का उद्देश्य है।

(कुंजी शब्द : परिवार, संस्था , शादी , अवधारणा आदि)

मानव जीवन की सर्वोंगीण सुव्यवस्था के लिए पारिवारिक जीवन प्रथम सोपान है । आज तकनीकी के बहुआयामी विकास ने विश्व के विभिन्न व्यक्तियों तथा समाजों को एक दूसरे के करीब लाने का कार्य किया है तथा एक दूसरे को परस्पर प्रभावित कर उन्हें परिवर्तनशील भी बना रहा है, जो प्राचीन भारतीय मनीषियों की उक्ति 'वसुधैव कुटुंबकम' को भली-भांति सार्थकता प्रदान करता है। परिवार समाज की एक छोटी सी इकाई अथवा समाज का ही एक छोटा स्वरूप है । परिवार मानव – जीवन के प्रारंभ से ही उसके साथ रहा है । चार्ल्स कूले मानते हैं कि परिवार एक ऐसा प्राथमिक समूह है; जिसमें बच्चे के सामाजिक जीवन व आदर्शों का निर्माण होता है । परिवार व्यक्ति के सामाजिकरण का एक प्रमुख साधन भी है । डॉ. श्री राम शर्मा परिवार की महत्ता के विषय में लिखते हैं-"समाज की सर्वाधिक

महत्तपूर्ण इकाई परिवार होती है।पारिवारिक जीवन के विश्लेषण से समाज के स्वरूप की स्पष्ट झाँकी मिल सकती है "। (1) एक घर में और एक के ही संरक्षण में रहने वाले लोग अथवा एक ही पूर्व पुरुष के वंशजों को परिवार कहा जा सकता है । "परिवार व्यक्तियों का ऐसा समूह माना जा सकता है जो विवाह और रक्त सम्बन्धों से संगठित होता है । " (2)

परिवार शब्द के अंग्रेजी पर्याय फेमिली शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द फेमुलस से हुई है , जिसका अर्थ है सेवक अथवा नौकर । फेमुलस शब्द एक ऐसे समूह का संबोधन करता है; जिसके अन्तर्गत परिवार के विभिन्न सदस्यों जैसे माता- पिता , बच्चे तथा नौकर इत्यादि को भी स्थान दिया गया है । समय और परिस्थिति के अनुसार परिवार के स्वरूप में बदलाव आता रहता है तथा विचारकों ने अपने – अपने हिसाब से उसे परिभाषित करने का प्रयत्न किया है । ऐसी कुछ परिभाषाएं निम्नलिखित हैं। अर्नाल्ड ग्रीन परिवार के संदर्भ में कहते हैं- "परिवार संस्थायीकृत सामाजिक समूह है ,जिस पर जनसंख्या प्रस्थापन का भार है । " (3) आगव्रन और निमकाफ के अनुसार – "बच्चों सहित अथवा बच्चों रहित एक पति – पत्नी के या किसी एक पुरुष या स्त्री के अकेले ही बच्चे सहित एक थोड़े-बहुत स्थायी संघ को परिवार कहते हैं । " (4) इलियट तथा मैरिल के अनुसार – "परिवार पति ,पत्नी एवं बच्चों से निर्मित एक जैविक सामाजिक इकाई है । " (5) मैकाइवर और पेज के अनुसार –"परिवार पर्याप्त निश्चित यौन- संबंध द्वारा परिभाषित एक ऐसा समूह है जो बच्चों को पैदा करने तथा लालन – पालन करने की व्यवस्था करता है । " (6) "एक अर्थ में हम परिवार की परिभाषा में एक बच्चे सहित स्त्री और उनकी देखभाल के लिए पुरुष को ले सकते हैं । " (7) डी .एन मजूमदार के अनुसार –" परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो एक ही छत के नीचे रहते है ,रक्त से संबधित होते है और स्थान ,स्वार्थ और पारस्परिक आदान – प्रदान के आधार पर एक किस्म की चेतनता अनुभव करते है । " (8) डेविस परिवार के संबंध में कहते हैं-"परिवार ऐसे व्यक्तियों का समूह है ,जो रक्त के आधार पर एक दूसरे से संम्बन्धित तथा जो परस्पर नातेदार है । " (9) इस प्रकार अनेकों विद्वानों ने अपने – अपने सोच विचार के अनुसार परिवार को परिभाषित करने का प्रयास किया है ।

परिवार के उद्भव काल के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं । कुछ परिवार की उत्पत्ति के कारण को व्यक्ति की जैविक आवश्यकता से जोड़ कर देखते हैं तो कुछ इसे व्याख्यायित करने के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का सहारा लेते हैं । विश्व की किसी संस्कृति में पारिवारिक व्यवस्था की उत्पत्ति को पौराणिक ग्रंथों एवं कथाओं के आधार पर व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है । परिवार के

उद्भव और विकास संबंधी अध्ययन से संबंध रखने वाले पंडित एवं विद्वानों ने अपनी खोजों तथा विचार क्षमता के अनुरूप चाहे जो भी व्याखाएं दी है, सच्चाई यह है कि परिवार के क्रमिक विकास की इतनी लंबी अवधी के पश्चात उसकी उत्पत्ति के कारण ,समय अथवा स्थान के विषय में सटीक रूप से कुछ भी कहना लगभग संभव नहीं है ।

मारगन ,फेजर तथा ब्रिफाल्ट यौन सिद्धांत के पक्षधर है । इन लोगों का मानना है कि प्रारंभिक अवस्था में परिवार और शादी का अस्तित्व ही नहीं था । पहले कोई भी पुरुष किसी भी स्त्री से यौन संबंध स्थापित कर सकता था । इस सिद्धांत को यौन सिद्धांत कहा जाता है । आज भी विभिन्न समुदायों में इससे सम्बंधित प्रथाएं चलती रहती है । आज भी आदिवासी समाजों में यौन संबंधी निश्चित नियमों के अभाव में एक हद तक यौन स्वचछंदता व्याप्त है । जीवन शास्त्रीय सिद्धांत के अनुसार परिवार के उद्भव का मूल कारण जाति की सुरक्षा , गर्भावस्था में स्त्री तथा प्रसव के पश्चात बच्चे का एक लंबे अंतराल तक पोषण तथा देख – रेख एवं सुरक्षा की आवश्यकता को माना गया है । वेस्ट मार्क इसके बारे में कहते हैं – " परिवार के उद्भव का मूल कारण जाति की सुरक्षा की चिंता है । गर्भावस्था में स्त्री का पोषण और प्रसव के बाद बच्चों का लंबे काल तक पोषण करना होता है । पुरुष इस कार्य में शिथिल हो सकता है , लेकिन स्त्री के लिए यह कार्य सुचारू रूप से निभाने के लिए परिवार आवश्यक था । " (10) अत: यह सिद्धांत यौन सिद्धांत की अपेक्षा एक हद तक तार्किक जान पड़ता है ।

मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के पक्षधरों का विचार यह है कि मनुष्य में ज्ञान का विकास करने के स्वाभाविक एवं सहज गुण विद्यमान होने से प्रारंभ में ही मनुष्य ने पारिवारिक जीवन का निर्माण किया । एक सामान्य तर्क के द्वारा इसे प्रमाणित करने का प्रयास किया जाता है, एकाकी स्वभाव मानसिक अवस्था की ओर इशारा करता है। जब किसी की मानसिक स्थिति बिगड़ जाती है ,तब वह जीवित होते हुए भी एक मृत – प्राय सा होकर परिवार को एकाकी विचरण करता है । प्रायः कहा जाता है कि परिवार के निर्माण में मनोवैज्ञानिक कारण काफी प्रभावी था । विवाह सिद्धांत वेस्टमार्क का मानना है कि यौन साम्यवाद जैसे कोई व्यवस्था थी ही नहीं । उनके मतानुसार पुरुष द्वारा स्त्री पर अपने आधिपत्य स्थापित करने की भावना ने परिवार को जन्म दिया । कोई भी पुरुष अपनी स्त्री को किसी पराए मर्द के साथ देखने पसंद नहीं करता, अतः इसी भावना ने एक विवाही परिवार का निर्माण किया । यह व्यवस्था आज भी हमारे समाज में देखी जा सकती है ।

परिवार आदिम काल से विकास और विघटन की अनेक अवस्थाओं को पार करता हुआ चला आ रहा है । अग्नि युग (पूर्व वैदिक युग) में पहले प्रत्येक परिवार को घर में अग्नि रखनी पड़ती थी । लोग अग्नि से अपना पारिवारिक संबंध जोड़ा जाता है । इसके महत्व इतना अधिक था कि लोग अग्नि से प्रार्थना कर अपने लिए पुत्रों से फलते- फूलते घर की कामना किया करते थे । यह युग आर्थिक विकास का युग मानते हैं । जिसमें पिता - पुत्र मिलकर परिवार को संपन्न बनाते थे । इस युग में पिता को भी अधिक अधिकार प्राप्त थे, इसके कारण पिता – पुत्र में झगड़े होते थे । यह युग ब्राह्मणों के वर्चस्व का युग भी माना जाता है । यौन सुख के साथ – साथ संतान प्राप्ति को भी पति का मुख्य कर्तव्य माना जाता था अतः इसके लिए अनेक प्रकार के कर्मकांडो और संस्कारों की व्यवस्था की गई। इस युग में नारी का कोई खास महत्व नहीं था । पौराणिक युग में पुराणों की रचना की गई है । इस युग तक आते ही समाज में परिवारों के विघटन की प्रक्रिया शुरू हो गई । स्व अर्जित संपत्ती को अलग रखने की मान्यता भी मिली ,परन्तु विभाजन में पिता की अनुमति की आवश्यकता के साथ – साथ उसे यह अधिकार भी दिया गया कि वह अपनी संपत्ति का इच्छानुसार विभाजन करें ।

परिवार एक जैविक इकाई है ; जिसमें पति तथा पत्नी के मध्य संस्थायीकृत यौन सम्बन्ध होता है । वह एक दूसरे से निकटवर्ती संबंधी रखता है । एक परिवार का जन्म समाज द्वारा स्वीकृत स्त्री – पुरुष के वैवाहिक संबंध से होता है । बाद में यौन संबंध के परिणाम स्वरूप पैदा होने वाली संतान को भी समाज बड़ी ही सहजता के साथ स्वीकार करता है । यह संतान अपने माता – पिता के साथ उस परिवार का एक सदस्य बन जाता है । वह वैवाहिक संबंध आजीवन बना रहता है । हर एक परिवार में जीविकोपार्जन हेतु अनिवार्य वस्तुओं ,साधनों की प्राप्ति के लिए कोई न कोई आर्थिक आवश्य मौजूद होती है ताकि उसके द्वारा परिवार के सदस्यों का पालन पोषण हो सके । अक्सर घर का मुखिया कोई न कोई व्यवसाय करता है और परिवार के लिए धन आजित करता है । प्रत्येक परिवार किसी न किसी नाम से जाने जाते है । वंश के नाम से ही परिवार के लोगों का उपनाम रखते हैं । यह वंश नाम मातृवंशीय अथवा । पितृवंशीय के आधार पर ही रखता है ।

परिवार के लिए एक निवास स्थान की आवश्यकता होती है । जिसके अभाव में बच्चों के पालन – पोषण को यथेष्ठ रूप से पूर्ण कर पाना अत्यंत कठिन होगा अतः परिवार के सदस्यों को रहने के लिए एक निवास स्थान की ज़रूरत होती है । यह मातृस्थानीय या पितृस्थायीय होता है । आज कल विवाहोपरांत पति- पत्नी अपना नया निवास बनकर रहने लगते हैं । परिवार अन्य सभी

सामाजिक समूहों की अपेक्षा सर्वाधिक सार्वभौम है। इसकी उपस्थिति हर समाज ,सामाजिक विकास की हर अवस्थाओं तथा हर युग में रही है । सार्वभामिकता का पराकाष्ठा यही है कि परिवार के बिना मानव और उसके समाज के अस्तित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती ।

परिवार सामाजिक कानूनी नियमों एवं रीति- रिवाजों से विशेष रूप से सुरक्षित रहता है । परिवार व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों ही दृष्टिकोण से अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है । इस तरह परिवार की कई सामान्य विशेषताएं होती हैं । भावात्मक आधार, रचनात्मक प्रभाव , केंद्रीय स्थिति, सीमित आकार,सदस्यों का उत्तरदायित्व, स्थायी एवं अस्थायी प्रकृति आदि भी परिवार की विशेषताएं है ।

प्रत्येक समाज में परिवार का स्वरूप भिन्न- भिन्न होता है । प्रत्येक समाज में ही नहीं बल्कि एक ही समाज के अलग प्रांतीय विस्तार में भौगोलिक, समाजिक तथा सांस्कृतिक अवस्थाएं भिन्न – भिन्न होती हैं । अतः परिवार का स्वरूप भी एक समान नहीं होती। परिवारों का वर्गीकरण विभिन्न आधार पर किया जा सकता है – इसके आधार पर परिवार को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है, हर एक परिवार के सदस्यों को रहने के लिए निवास स्थान की आवश्यकता रहती है। जिसका निश्चय उस समूह में प्रचलित नियम के अनुसार ही होता है । अतः विवाहोपरांत पत्नी अपने पति के घर में रहना पड़ता है । उसे पितृस्थानीय परिवार कहते हैं । इस प्रकार की पारिवारिक व्यवस्था में पत्नी अपने पिता के अधीन न रहकर सम्पूर्ण परिवार की स्वामिनी होती है । पति अपना घर छोड़कर पत्नी के घर उसके परिवार, रिश्तेदारों के साथ रहने जाते हैं तथा पूरी संपत्ति पर पत्नी का अधिकार होता है । इस प्रकार के परिवार में दंपति पति अथवा पत्नी के सगे संबंधियों के साथ न रहकर अपना एक अलग घर बनाकर वहां रहता है । इस प्रकार के परिवार भारत के नगरीय एवं महानगरीय विस्तार में सामान्य रूप से देखा जा सकता है । भारत के परिवार पितृसत्तात्मक है। नारी को इसलिए अधिकार काम है।

भारतीय परिवार में पति – पत्नी के अतिरिक्त बच्चे , चाचा , पौत्र आदि भी होते हैं । इसमें पुत्र विवाहोपरांत पिता से अलग नहीं रहता , अपितु उनके साथ ही जीवन – यापन करता है । बच्चा जन्म से ही पारिवारिक संपत्ति में भागीदार बन जाता है । अतः यह एक प्रकार का सामाजिक समूह है । परिवार की यह व्यवस्था ' संयुक्त परिवार ' के नाम से जानी जाती है । परिवार के सभी सदस्य सामान्यतः समान धर्म में विश्वास करते हैं। तथा समान देवी देवताओं की पूजा करते हैं । संयुक्त परिवारों में मुखिया को छोड़कर बाकी सभी सदस्यों के समान अधिकार होते हैं । संयुक्त परिवार के

गुणों की बात करें तो यह परिवार के हर सदस्य को जीविका प्रदान कर ,आर्थिक उन्नति को सुनिश्चित करता है ।

संयुक्त परिवार में भी कई दोष विद्यमान है । डॉ. बालकृष्ण भट्ट का मानना है कि " दिन दिन परिवार बढ़ता जाता है , उनके भरण पोषण और विवाह के खर्च का बोझ मनमाना लदता जाता है । होते होते वह घराना या तो नष्टप्राय हो जाता है या रहा भी तो किसी गिनती में नहीं । " (11) काम न करने वाले व्यक्ति का पोषण करके यह समाज को एक निकम्मा नागरिक देता है । अतः देख सकता है कि कुछ लोग अधिक श्रम कर रहा है और कुछ आलस्यपूर्ण जीवन जी रहा है । संपत्ति के नाम से परिवार में झगड़ा पैदा होती है । संपत्ति संचय को रोकने के साथ – साथ यह अनियंत्रित प्रजनन को जन्म देता है । आज औद्योगिकरण ने इस व्यवस्था में विघटन की समस्या उत्पन्न कर दी है । गाँवो से जीविकोपार्जन के साधनों के नष्ट होने से लोग व्यवसाय हेतु गाँवों से शहरों की ओर पलायन करने लगता है , जिससे संयुक्त परिवार टूटा जा रहा है । विकास और शिक्षा ने समाज को पश्चिमी विचारों से भी प्रभावित किया है , जो संयुक्त परिवार के विघटन का कारण बन रहा है । अब भारत में अणु परिवारों का बोलबाला है।

संदर्भ संकेत

1. श्रीराम शर्मा : लोक साहित्य का सामाजिक – सांस्कृतिक अध्ययन- पृ.18

2. डॉ.वीरश्री वशिष्ठजी आर्य : मालती जोशी के कथा साहित्य में पारिवारिक तनाव – पृ.43

3 . डॉ. विद्याभूषण और डी.आर सचदेवा : समाज शास्त्र, पृ.124

4. रवीन्द्र नाथ मुकर्जी : भारतीय सामाजिक संस्थाएं, पृ.130

5. डॉ. विद्याभूषण और डी.आर सचदेवा : समाज शास्त्र, पृ.124

6. रवीन्द्र नाथ मुकर्जी- भारतीय सामाजिक संस्थाएं, पृ.130

7. 3.अंतर्जाल – www.kailasheducation.com

8. 5. अंतर्जाल – www.kailasheducation.com

9 . डॉ. विद्याभूषण और डी.आर सचदेवा : समाज शास्त्र, पृ.124

10. डॉ. रमण भाई पटेल : सातवें दशक के हिंदी उपन्यास, पृ.25

11. वही : पृ. 15